International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 5; September 2018; Page No. 55-57

औपनिवेशिक दौर और हिंदी जनक्षेत्र

डॉ. बृज किशोर

एसोशिएट प्रोफेसर, मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

भारत में औपनिवेशिक दौर का आरंभ

भारत और यूरोप के व्यापारिक संबंध बहुत पुराने हैं । भारत और यूनान का व्यापारिक संबंध बहुत पुराना है। यूरोप के कई देशों के साथ मध्यकाल में व्यापारिक संबंध विकसित हुए। 16वीं सदी वह ऐतिहासिक समय है जब यूरोप के व्यापारियों ने अपने सैनिकों के साथ भारत को अपने अधीन बनाने का सिलसिला आरंभ किया। विपिन चंद्र के अनुसार, "एशियाई व्यापार पर अंग्रेज़ व्यापारियों की लालच भरी निगाहें भी जमी थीं । पुर्तगालियों की सफलता, मसालों, मलमल, रेशम, सोने, मोतियों, दवाओं, पोर्सलीन और एबनी से भरे उनके जहाज़ों और इनसे प्राप्त भारी मुनाफे ने अंग्रेज़ व्यापारियों की भी आँखे चकाचौंध कर दीं।.....1599 में मर्चेंट एडवेंचरर्स नाम से जाने वाले कुछ व्यापारियों ने पूर्व से व्यापार करने। इस कंपनी को, जिसे ईस्ट इंडिया कंपनी कहा जाता है ।[1] भारत में इस कंपनी की शुरुआत बहुत मामूली रही। लेकिन धीरे-धीरे कंपनी ने भारत को अपनी औपनिवेशिक महत्त्वाकांक्षा का शिकार बना लिया। 1757 ई॰ का प्लासी का युद्ध उनकी महत्त्वाकांक्षा में मील का पहला बड़ा पत्थर है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' में औपनिवेशिक दौर की चर्चा करते हुए लिखा है कि, 1757 ई॰ की प्लासी की लड़ाई के बाद अंग्रेज़ों का प्रभाव बढ़ता ही गया। मुगल साम्राज्य क्रमशः क्षीण होता गया और विभिन्न प्रांतों के शासक स्वतंत्र होते गए। बाद के कुछ वर्षों में मराठों की शक्ति भी क्षीण होती गई और अंतिम तौर पर 1764 ई॰ की बक्सर की लड़ाई में मुगलों का अंतिम बादशाह शाहआलम अंग्रेज़ों के हाथ पराजित हुआ। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हिंदी प्रदेशों का पूर्वी द्वार अंग्रेज़ों के लिए खुल गया ।[2]

'आधुनिक भारत का इतिहास' में इतिहासकार विपिन चन्द्र ने बंगाल के कवि नवीनचंद्र सेन को उद्धृत करते हुए लिखा है कि, "प्लासी के युद्ध के बाद "भारत के लिए शाश्वत दुख की काली रात" का आरंभ हुआ। अंग्रेज़ों ने मीर जाफर को बंगाल का नवाब घोषित किया और उससे अपना इनाम माँगने लगे। कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुक्त व्यापार का निर्विवाद अधिकार मिल गया।"[3] अब अंग्रेज़ों को रोकने वाला कोई नहीं था। बक्सर के युद्ध में यह सिद्ध भी हो गया । वस्तुतः 1764 ई॰ की बक्सर की लड़ाई के बाद समूचा हिंदी भाषी प्रदेश अंग्रेज़ों के प्रभाव में आ गया । 1826 ई॰ में भरतपुर भी अंग्रेज़ों के अधीन हो गया। इस तरह अंग्रेज़ों ने भारत के विशाल साम्राज्य को हड़प लिया ।

"सन 1860 के बाद देश में पूर्णरूप से शांति और व्यवस्था कायम हो गई । यातायात के साधन सुलभ हो गए और क्रमशः उनमें सुधार होता गया। यहीं से वास्तविक आधुनिक साहित्य का आरंभ होता है, लेकिन जिन हिस्सों में पहले ही से अंग्रेज़ी शासन सुदृढ़ हो गया था वहाँ प्रेस का आगमन बहुत पहले से ही हो चुका था और थोड़ा-बहुत आधुनिक साहित्य का प्रकाशन भी होने लगा था ।"[4]

जनक्षेत्र की अवधारणा

जनक्षेत्र वह सामाजिक जीवनवृत्त या अवस्थिति है जिसके निर्धारण में सामाजिक संप्रेषण की अनिवार्यता, जन विमर्श की प्रकृति तथा नागरिक सहभागिता की संख्या महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। युरगेन हैबरमास ने 'द स्ट्रक्चरल ट्रांसफोरमशन ऑफ द पब्लिक स्फियर' में जनक्षेत्र की अवधारणा की व्यापक चर्चा की है। *2* नवम्बर, 2011 के जनसत्ता अख़बार के एक लेख में सुधीश पचौरी ने जनक्षेत्र पर विचार करते हुए लिखा है, "हिंदी में जनआंदोलन की अवधारणा जितनी 'यादृच्छिक' है उतनी ही जनक्षेत्र की अवधारणा। जनक्षेत्र का अपना बंधन, स्वयं मान्य अनुशासन और मर्यादाएँ होती हैं जो जनक्षेत्र को बरतने के दौरान बरतने वालों के व्यवहार से बनती हैं। इसी अर्थ में जनक्षेत्र जनतंत्र के पूरक और विकास का रूप ग्रहण करता है।"[5] वे आगे लिखते हैं, "जनक्षेत्र एक ऐसी जगह, निरंतर संवादात्मक जगह होती है जिसमें राज्य सत्ता और नागरिकजन राज्य सत्ता के संदर्भ में संवाद के मुद्दे उठाकर संवाद पैदा कर जनमत जागकर राज्य सत्ता को जनापेक्षी करने का प्रयत्न कर सकते हैं । इस तरह यह क्षेत्र 'भूगोल' में उतना नहीं होता जितना कि सामाजिक संवाद, प्रक्रियाओं, जनसभाओं, खुले जन संगठनों, खुले मीडिया में, पत्र पत्रिकाओं (और आजकल सोशल नेटवर्किंग साइट्स से लेकर ब्लॉगों तक) में होता है। जनक्षेत्र बराबरी का संवाद होता है । नागरिक विमर्श की निरंतरता उसका स्वभाव है । वहाँ अथक बहस और तर्क होते हैं । इसका कोई एक आदर्श मॉडल नहीं हो सकता ।"[6] 'भारत की भाषा समस्या' नामक पुस्तक में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि, "हिन्दी भाषी प्रदेश भारत का सबसे बड़ा जातीय प्रदेश है । स्वभावतः इसी प्रदेश में अन्य किसी जातीय प्रदेशों की अपेक्षा जनपदों की संख्या अधिक है । इसी प्रदेश में फारसी राजभाषा रही है । इसी प्रदेश की साहित्यिक या शिष्ट भाषा के दो रूप हैं, हिन्दी और उर्दू। इसलिए जातीय निर्माण और जातीय भाषा के विकास की प्रक्रिया अन्य प्रदेशों की अपेक्षा यहाँ ज्यादा पेचीदा है ।"[7]

हिन्दी प्रदेश पर विचार करते हुए 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका' में लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है, "हिन्दी प्रदेश एक प्रकार से भारतीय सभ्यता और संस्कृति की लीलाभूमि रहा है । भाषा, साहित्य, इतिहास और राजनीति आदि सभी दृष्टियों से उसका केंद्र यही था और यहीं से सब बातें देश के कोने-कोने में फैलीं । इतिहास इस बात का साक्षी है कि आधुनिक काल में ब्रिटिश राज्यान्तर्गत भी उसके गौरवपूर्ण स्थान में कोई अन्तर नहीं पड़ा ।[8] वे भारत को भौगोलिक दृष्टि से तीन भागो में विभाजित करते हैं । उनके अनुसार, "भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष तीन बड़े-बड़े भागों में विभाजित किया जाता है । भारतवर्ष का नक्शा यदि हम अपने सामने रखें तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है । पहला भाग तो वह है जो हिमालय नाम से अभिहित किया जाता है । हिमालय के सीमांत पहाड़ी प्रदेश भी इसमें शामिल किए जाते हैं । इसके दक्षिण में गंगा और सिंधु के मुहानों के बीच का विशाल मैदान है । उससे नीचे दक्षिण भारत का पठार है (दक्खिन) । विशाल मैदान और दक्खिन के बीच विंध्य पर्वत माला नाम की विभाजन रेखा है । इन तीन प्रधान भागों में से हिन्दी प्रदेश विशाल उपजाऊ मैदान का एक बहुत बड़ा मध्य और प्रधान भाग है । और वैसे तो शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिंदी' शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़ अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है ।[9]

औपनिवेशिक दौर में हिंदी जनक्षेत्र की स्थिति

..... अंग्रेज़ों और उनके द्वारा यूरोपीय संस्कृति के साथ संपर्क स्थापित होने से भारतवर्ष का अब तक का अलसाया जीवन ज़ोर का धक्का खाकर एकदम उठ खड़ा हुआ और उसमें अनेक क्रांतिकारी अच्छे या बुरे परिवर्तन हुए। जहाँ तक साहित्य का संबंध है परम्परागत, रूढ़िग्रस्त और शक्तिहीन एवं निष्प्राण काव्य साहित्य के स्थान पर नए साहित्य रूपों और भावों का प्रचार हुआ।[10] जब तक विदेशी आक्रमणकारी उत्तर पश्चिम के स्थल मार्ग से आते रहे, हिंदी प्रदेश का उनके साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान होते देर न लगती थी। किन्तु इस संबंध में एक समुद्रतट के अभाव ने हिंदी प्रदेश की इस स्थिति में परिवर्तन उपस्थित कर दिया । अंग्रेज़ जाति नाविक शक्ति के रूप में आई थी और पहले-पहल वह बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, बम्बई आदि के समुद्री किनारों पर बस जाती थी । फलतः यूरोपीय भावों और विचारों का सर्वप्रथम प्रभाव इन स्थानों में दृष्टिगोचर होता था । हिंदी प्रदेश दूर पड़ता था, इसलिए यहाँ के साहित्यिक केंद्र नवीनता प्रदर्शित करने या नवीन और प्राचीन का सुंदर सामंजस्य उपस्थित करने में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे केंद्रों से पिछड़ गए । यातायात के साधनों का उस समय प्रचार न होने से हिंदी प्रदेश तक नवीनता के आने में देर लगती थी । आलोच्यकाल में यूरोपीय प्रभाव हिंदी समाज की ऊपरी सतह के केवल कुछ किनारे स्पर्श कर सका था। और कुछ दिनों तक हिंदी काव्य अपना महान अतीत लिए उससे अलग रहा। शासन, राजनीति और शिक्षा संबंधी नवीन आवश्यकताओं के कारण खड़ी बोली गाड़ी को अवश्य प्रोत्साहन मिला।[11]

रामविलास शर्मा ने 1857 के बाद की स्थिति पर विचार करते हुए लिखा है कि सन 1857 के विद्रोह के बाद जब भारत का राज कंपनी बहादुर के हाथ से महारानी विक्टोरिया के हाथ में आ गया तो बहुत लोग समझे कि उस शासन-व्यवस्था का - जिसे जॉन ब्राइट ने 'ए हंड्रेड यीअर्स ऑफ क्राइम' कहा था - अब अंत हो गया। महारानी के लिए जो घोषणापत्र पहले तैयार किया गया था, उसे उन्होने अस्वीकार कर दिया और उससे अधिक सहृदयतापूर्ण घोषणापत्र तैयार कराया। उसमें भारतवासियों को मधुर-मधुर आश्वासन दिये गए और डलहौजी आदि की नीति को देखते हुए उस समय लोगों को ये आश्वासन और भी मधुर लगे होंगे, इसमें संदेह नहीं। विद्रोह के पहले अंग्रेज़ जिस प्रकार छोटे-छोटे राज्य हड़प चुके थे तथा विद्रोह में और उसके पश्चात उन्होंने जो अपना अप्रिय रूप दिखाया था, उसकी याद करके लोगों ने उन सब बातों से इन आश्वासनों की तुलना की और उनका हृदय गदगद हो गया। कवियों के कंठ से प्रशास्तियाँ फूट पड़ीं और प्रजा ने अपने आपको महारानी विक्टोरिया की अधीनता में समझकर सुख की साँस ली और अपना भाग्य सराहा। प्रजा के बहुत से शुभचिंतकों ने सोचा कि बस प्रार्थना-पत्र भेजने की देर है। सुनवाई हुई नहीं कि सभी क्लेश मिट गए। भारतेंदु युग का बहुत-सा साहित्य राज-भक्ति के भावों से परिपूर्ण है; उसका यही रहस्य है।[12] रामविलास शर्मा हिंदी जनक्षेत्र की भाषाई विविधता को भी पहचानते हैं। उनका कहना है, "विशाल हिंदी भाषी प्रदेश में बहुत-सी बोलियां बोली जाती हैं। मालवे से लेकर मिथिला तक, अवध से लेकर हरियाणा तक इस प्रदेश में अनेक जनपद हैं, उनकी ज़ुदा-ज़ुदा बोलियां हैं।"[13] हिंदी जनक्षेत्र की व्यापकता की चर्चा करते हुए लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है की, "हिंदी प्रदेश इतना बड़ा और विस्तृत है की उसमें एक भाषा का होना असंभव था। इसलिए उसमें एक से अधिक बोलियां हैं जिनमें से ब्रजभाषा और खड़ी बोली विभिन्न युगों में साहित्यिक पद प्राप्त करती रही है। इन दो के अतिरिक्त अवधी में भी उच्च कोटि के साहित्य की रचना हुई है।"[14]

रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा' में भारतेंदु युगीन साहित्य पर विचार करते हुए लिखा है कि, "भारतेंदु का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि वह भारतीय समाज के पुराने ढांचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है। भारतेंदु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा आदि के भी वे समर्थक थे।"[15]

अंग्रेज़ों ने भारत की औद्योगिक उन्नति की या उसे चौपट किया, इस बारे में भारतेंदु लिखते हैं, "सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था, यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी न रहा। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वालों ने जो द्रव्य व्यय किया है उसका ब्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।"[16] भारतेंदु ने लिखा है कि "कपड़ा बनाने वाले, सूत निकालने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख माँगते हैं" - खेती करने वालों की यह दशा है कि लंगोटी लगाकर हाथ में तुंबा ले भीख माँगते हैं और जो निरुद्यम हैं उनको तो अन्न की भ्रांति है।[17] स्पष्ट है कि भारतेंदु युग का साहित्य औपनिवेशिक दौर में हिंदी की स्थिति को ही नहीं बल्कि तत्कालीन भारत की दुर्दशा का हमारे समक्ष अभिव्यक्त करने में सक्षम है। रामविलास शर्मा ने कहा भी है कि, "भारतेंदु युग का साहित्य हिंदी भाषी जनता का जातीय साहित्य है, वह हमारे नवजागरण का साहित्य है।"[18]

औपनिवेशिक दौर की भाषा नीति

'सांप्रदायिकता आतंकवाद और जनमाध्यम' पुस्तक में अंग्रेज़ों द्वारा भारत के शोषण का वर्णन करते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है, "अंग्रेज़ों ने भारतीय समाज को जिस तरह लूटा और शोषण किया उसकी भारतीय इतिहास में मिसाल मिलना मुश्किल है। अंग्रेज़ों के ज़माने की लूट और इसके पहले के लुटेरे शासकों की लूट का विश्लेषण करते हुए दादाभाई नौरोजी ने 1871 में वित्त संबंधी जाँच कमेटी के सामने दिये अपने वक्तव्य में कहा, 'पहले जो विजेता आए, वे या तो लूट का माल लेकर चले गए या फिर इस देश के शासक बन गए। जब लूटपाट करके चले गए तब बेशक उन्होने भारी घाव दिए लेकिन भारत ने अपने उद्योगों के बल पर फिर जीवन पाया और घाव भर गए। .....पुराने शासक कसाई जैसे थे, कभी इधर छुरा मारा कभी उधर मारा, लेकिन अंग्रेज़ों के पास वैज्ञानिक छुरा है और वह सीधा कलेजे तक पहुँचता है और कमाल यह है कि घाव दिखाई नहीं देता; सभ्यता, प्रगति और जाने क्या-क्या, ऊँची-ऊँची बातों का पलस्तर चढ़ा दिया जाता है और घाव ढक जाता है।[19] यह स्पष्ट है कि अंग्रेज़ों ने भारत के सामंतों को अपना मित्र और चाकर बनाया। उनकी नीति 'फूट डालो और राज करो' की थी। उस समय के नवाबों-सामंतों के दरबार जन-संस्कृति के केंद्र नहीं रह गए थे इसलिए जनता से उनका जो अलगाव था वह उनके संरक्षण में चलने वाली भाषा नीति पर भी पड़ा। उदाहरण के लिए हम उस समय के लखनऊ, रामपुर और हैदराबाद के दरबारों को देख सकते हैं। जो उस समय एक खास तरह की भाषा शैली और कविता के केंद्र बनकर उभरे। 1802 के पहले हिंदी की कोई पुस्तक मुद्रित रूप में सामने नहीं आई थी। इस वर्ष कलकत्ता के हरकारू प्रेस, कलकत्ता गज़ट प्रेस, मिरर प्रेस से मरसिया, सिंहासन बत्तीसी, माधोनल, शकुंतला नाटक और बैताल पचीसी का प्रकाशन हुआ।

इसी तरह 1802 ई॰ खड़ी बोली हिंदी साहित्य के इतिहास में ऐतिहासिक वर्ष है जबकि हिंदी की तीन पुस्तकों ने संभवतः प्रथम बार प्रेस से संबंध जोड़ा। इसके बाद 1803 ई॰ में हिंदुस्तानी प्रेस से चतुर्भुज मिश्र की ब्रजभाषा पुस्तक का 'लल्लू जी लाल कवि' द्वारा किया गया खड़ी बोली रूपांतर 'प्रेमसागर' के नाम से प्रकाशित हुआ।[20]

खड़ी बोली हिंदी जिस समय जातीय भाषा के रूप में स्थान ग्रहण करने की प्रक्रिया में अपना स्तरीय स्वरूप बनाने का प्रयत्न कर रही थी, उस समय अंग्रेज़ों और हिंदी विरोधियों की ओर से अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित की गईं। इन्हीं बाधाओं से जूझते हुए राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का अभ्युदय एक ऐसे शिक्षाविद के रूप में

हुआ जो हिंदी के समर्थन और उसके उत्थान का व्रत लेकर आया था। 1845 में आप ब्रिटिश हुकूमत के तहत शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर नियुक्त हुए। शिक्षा विभाग में नौकरी के समय ही आपने लगभग 26 रचनाएँ लिखीं। ये सभी पाठ्यपुस्तकों के रूप में रची गई थीं। वे हिंदी में संस्कृत के शब्दों के स्थान पर अरबी-फारसी के शब्दों के हिमायती थे। [21]

भारतेंदु युग में सांस्कृतिक परिवर्तन की लड़ाई के लिए जो क्षेत्र चुने गए उनमें सबसे पहले क्षेत्र भाषा का था। ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली हिंदी की स्थापना का प्रश्न मूलतः जातीय भाषा के तौर पर हिंदी भाषी जातीयता के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण था। भाषा को बदलने का अर्थ है - समूचे सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश को बदलने के लिए संघर्ष करना, क्योंकि भाषा का पुराना रूप तभी बदलता है जबकि नया सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश भी हो। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो भाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी की स्थापना की लड़ाई सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्ष से जुड़ी हुई है।[22] भारतेंदुकालीन गद्य-साहित्य क्या, उस युग की संपूर्ण सृजन चेतना ही पूर्ववर्ती साहित्य से अलग है। हिंदी-भाषी जनसमूह के जातीय स्वत्व की पहचान और ब्रिटिश दासता से मुक्ति के लिए छटपटाती देशभक्तिपूर्ण आंतरिकता के इस नए संदर्भ में हिंदी का सर्वथा नया साहित्य लिखा जाने लगा। इसके अलावा हिंदी भाषी क्षेत्र की सभी बोलियों के बीच खड़ी बोली जातीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई, अतः हिंदी के प्रचार-प्रसार और उसे समुचित स्थान दिलाने के संघर्ष की पृष्ठभूमि में नया आह्वान भी सुनाई पड़ने लगा। भारतेंदु ने ही सबसे पहले कहा :

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान कै, मिटत न हिय को सूल।[23]

औपनिवेशिक दौर में भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाषा नीति पर विचार करना बहुत जरूरी है। भारतेंदु की भाषा नीति की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं:

- तत्सम के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग।
- बोलचाल में अरबी फारसी शब्दों का बहिष्कार न करना।
- गैर बुनियादी शब्द भंडार के किए संस्कृत का सहारा लेना।
- हिंदी को गाँव के साधारण पढ़े-लिखे लोगों के लिए सुलभ बनाना।
- नागरी लिपि का प्रयोग।

अंग्रेज़ों की भाषा नीति का प्रभाव इस हद तक था कि भारतेंदु आदि कई लेखकों ने उर्दू पर कटाक्ष भी किए - है है उर्दू हाय हाय! कहाँ सिधारी हाय हाय॥ लेकिन बाद के लेखकों बालमुकुंद गुप्त, प्रेमचंद, पद्मसिंह शर्मा आदि ने भाषा के मिले-जुले रूप का समर्थन किया। गांधी जी ने कहा कि भाषा समस्या का समाधान जनता के हित में होना चाहिए। उनका मानना था कि नेता अंग्रेज़ी में बोलना छोड़ें। जनता को जो समझ में आए उस भाषा में बोलें। सन 1931 में उन्होंने कहा कि यदि स्वराज्य अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतवासियों का है और केवल उनके लिए है तो संपर्क भाषा अवश्य अंग्रेज़ी होगी। यदि वह करोड़ों भूखे लोगों, करोड़ों निरक्षर लोगों, निरक्षर स्त्रियों, सताये हुए अछूतों के लिए है तो संपर्क भाषा केवल हिंदी ही हो सकती है।

औपनिवेशिक दौर के हिंदी जनक्षेत्र पर विचार करते हुए एक बात जो उभरकर आती है वह यह की हिंदी प्रदेश अनेक दुश्वारियों से निपटने के लिए अपने आपको सक्षम बना रहा था। अंग्रेज़ों द्वारा किए जा रहे शोषण के प्रति जागरूकता हिंदी में दिखाई देने लगी थी। भारतेंदु और उनके साथियों ने अंग्रेज़ों की चालों को समझने और हिंदी क्षेत्र की जनता तक पहुँचाने में अपनी महती भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक किया था।

संदर्भ

1. आधुनिक भारत का इतिहास, विपिन चंद्र, पृष्ठ 39
2. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 193-194
3. आधुनिक भारत का इतिहास, विपिन चंद्र, पृष्ठ 51
4. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 194
5. 2 नवम्बर, 2011, जनसत्ता अख़बार में प्रकाशित लेख, सुधीश पचौरी
6. वही
7. भारत की भाषा समस्या, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 292
8. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका' में लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ 10
9. वही, पृष्ठ 10
10. वही, पृष्ठ 19
11. वही 19-20
12. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 10
13. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 141
14. आधुनिक हिंदी साहित्य की भूमिका, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ 23
15. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, रामविलास शर्मा, भूमिका से उद्धृत
16. वही, भूमिका, (कविवचन सुधा, 9 मार्च, 1874 से उद्धृत)
17. वही, भूमिका
18. वही, भूमिका
19. 'सांप्रदायिकता आतंकवाद और जनमाध्यम', जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ 13
20. आधुनिक हिंदी साहित्य विवाद और विवेचना, मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह, पृष्ठ 7
21. वही, पृष्ठ 12
22. आधुनिक साहित्य और रामविलास शर्मा, सुधा सिंह, पृष्ठ 37
23. वही, पृष्ठ 17